26

मुक्ति

ध्यान दें:

स्वस्वरूप अज्ञान के नाश होने पर ब्रह्मस्वरूप साक्षात्कार से मुक्ति होती है। श्रुतियों में कहा भी गया है तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। वह मुक्ति दो प्रकार की होती है जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति। अद्वैदवेदान्तदर्शन में जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति का विस्तार से आलोचन उपलब्ध होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं प्रारब्ध, क्रियमाण तथा सञ्चित। ब्रह्मज्ञान होने पर क्रियमाण तथा सञ्चित कर्मों का नाश हो जाता है। देहारम्भ के प्रारब्धकर्म नाश के अभाव से देह के नाश होने पर ही होते हैं। मुक्तज्ञानी की यह अवस्था ही जीवन्मुक्ति होती है। प्रारब्ध कर्मों का नाश होने पर देहनाश होने से विदेह मुक्ति भी हो जाती है। प्रस्तुत पाठ में इन दोनों मुक्तियों के स्वरूप साधन तथा प्रयोजन का आलोचन किया जाएगा। बहुत से अद्वैतदार्शनिकों के द्वारा दो जीवन्तमुक्ति स्वीकार ही नहीं की गई हैं। इसलिए इस पाठ में जीवन मुक्ति कि सिद्धि के लिए युक्तियों का उपस्थापन किया जाएगा। जीवन मुक्ति का लोक व्यवहार, कर्मों के द्वारा उसकी अस्पृष्टता इत्यादि विषय भी यहाँ पर आलोचित किए जाएँगे। दोनों प्रकार की मुक्ति सिद्धि होने पर प्रमाणों का भी यथा प्रयोजन उपस्थापन किया जाएगा।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों का ज्ञान होगा;

- जीवन्मुक्ति के स्वरूप को समझने में;
- विदेह मुक्ति के स्वरूप को समझने में;
- जीवन मुक्ति की आवश्यकता है अथवा नहीं इस विषय को समझ पाने में;
- जीवन मुक्ति के साधन को समझ पाने में;
- जीवन मुक्ति का लोक व्यवहार समझने में सक्षम होंगे;
- जीवन मुक्ति का अज्ञान नाश कैसे होता है इस विषय को समझने में;
- विदेह मुक्ति की क्या स्थिति होनी चाहिए इस ज्ञान को समझने में;
- विदेह मुक्ति में प्रमाण
- विदहमुक्ति की आवश्यक्ता

ध्यान दें:

26.1) भूमिका

यहाँ सबसे पहले अद्वैतवेदान्त रीति के अनुसार जीवन्मुक्ति का आलोचन किया जाएगा।

जीवन मुक्ति क्या होती है, क्या इसके प्रमाण है, किस प्रकार से जीवन मुक्ति सिद्ध की जाए, इस का क्या प्रयोजन है। यहाँ पर कहते हैं कि जीवित पुरुष के कर्तृत्व भोक्तृत्व सुखदुः खादिलक्षण चित्तधर्म क्लेशरूपत्व से बन्ध होते हैं। ब्रह्मज्ञान होने पर इन बन्धनों का नाश होता है। जब प्रारब्धकर्मों के भोग के द्वारा क्षय के अभाव से जीव का शरीर अनुवर्तित होता है लेकिन ब्रह्मज्ञान के उदय होने से कर्तृत्वादि बन्ध दूर हो जाते है। तब जीवन्मुक्ति तथा मुक्त इस प्रकार से कहा जाता है।

वेदान्तसार में जीवन्मुक्ति के प्रतिपादनकाल में यह कहा गया है। **''जीवन्मुक्तो नाम स्वस्वरूपाखण्डब्रह्मज्ञानेन तदज्ञानबाधनद्वारा स्वस्वरूपाखण्डब्रह्मणि साक्षात्कृते अज्ञानतत्कार्यसञ्चित-कर्म -संशय-विपर्ययादीनाम् अपि बाधितत्वात् अखिलबन्धरहितः ब्रह्मनिष्ठः'' इति।**

अर्थात् स्वस्वरूप अखण्ड ब्रह्मज्ञान के द्वारा उस अज्ञान का बाध करके स्वस्वरूप अखण्डब्रह्म में साक्षात्कार करने पर अज्ञान तथा अज्ञान के कार्य कर्म संशय विपर्ययादि का भी नाश होने पर जो अखिलबन्धरहित ब्रह्मनिष्ठ होता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जीव का स्वरूप ही ब्रह्म होता है। जीव के स्वरूपभूत अखण्डब्रह्म का ज्ञान जब होता है तब स्वरूप अज्ञान तथा मूल अज्ञान का नाश हो जाता है। और स्वस्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। अज्ञाननाश से उसके कार्य सञ्जितकर्म संशय तथा विपर्ययादि का भी नाश हो जाता है। जीव अखिलबन्धरहित होकर ब्रह्म में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

26.2) जीवन्मुक्ति का प्रमाण

श्रुति ही जीवनमुक्त की सिद्धि में प्रमाण होती है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा भी गया है - तस्य तावदेव चिरं, यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये इति। श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ के विषय में भगवान ने विस्तार से बताया है। वे सभी वचन ही जीवन्मुक्ति में प्रमाण हैं

''ऐषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति॥'' इति।।

अर्थात्- हे पृथानन्दन ! यह ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर कभी कोई मोहित नहीं होता। इस स्थिति में यदि अन्तकाल में भी स्थित हो जाय, तो निर्वाण (शान्त) ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

आचार्य वसिष्ठ ने कहा है ''यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च। अस्तं गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते''।।इति।।

और विद्यारण्य स्वामी ने भी कहा है-

द्वैतावस्था सुस्थिता चेदद्वैते धीः स्थिरा भवेत्।
स्थैर्ये तस्याः पुमानेष जीवन्मुक्त इतीर्यते॥ इति।।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. जीवनमुक्त कौन होता है?
2. मुक्ति कितने प्रकार की होती है?

ध्यान दें:

3. जीवन्मुक्ति सभी सम्प्रदायों के द्वारा अङ्गीकार की गई हैं अथवा नहीं।
4. जीवन्मुक्ति का प्रमाण क्या है?
5. वेदान्तसार के लेखक कौन है?
6. धी इसका क्या अर्थ है?
7. जीवन्मुक्ति के लक्षण क्या होते हैं?
8. पुनः संसार बन्धन होता है अथवा नहीं।

26.3) जीवन्मुक्तिस्वरूपविचार

श्रुति तथा स्मृति के वाक्यों में जीवन्मुक्ति के सद्भाव में बहुत से प्रमाण है। उन्हीं को कठवल्ली आदि में पढ़ा जाता है। विमुक्तश्च विमुच्यते। सभी से विनिर्मुक्त होकर के सर्वभूतस्थ परमात्मा का ध्यान करते हुए जीवितदशा में इस लोक में अविद्या काम कर्मादिप्रत्यक्ष बन्धनों से मुक्त होकर के देह में विद्यमान होते हुए भी जीव मुक्त हो जाता है। उसकी फिर देहान्तर प्राप्ति सम्भव नहीं होता है। और बृहदारण्यक में भी कहा गया है –

''यदा सर्वे प्रमुच्यते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते''॥ इति।।

जब जीव हृदय में स्थित सभी काम पुत्रलोकवित्तैषणा आदि लक्षणों से मुक्त होता हैं तब वह जीव कामवियोग से जीवित ही अमृतमय हो जाता है। शरीर में विद्यमान रहते हुए ही ब्रह्मभाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। देहत्याग के बाद उसको लोकान्तर की प्राप्ति नहीं होती है। जिस लोक में ब्रह्मज्ञान होता है वहाँ पर ही उसका मोक्ष हो जाता है। इसलिए उसके बारे में ऐसा सुना जाता है "ब्रह्म समश्नुते " इस प्रकार से।

श्रुतियों के अन्दर भी "सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्म इव समना अमना इव " अर्थात् जीवन्मुक्त देह इन्द्रियादि में अभिमान के अभाव से भले ही वह आँख से देखता है फिर वह वस्तुतः नहीं देखता है।उसी प्रकार से सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। मानता हुआ भी नहीं मानता है। इन्द्रिय युक्त होकर भी निरिन्द्रिय हो जाता है।

स्मृतियों में भी जीवनमुक्त, स्थितप्रज्ञ, गुणातीतादिनामों के द्वारा वहाँ-वहाँ उसका व्यवहार किया गया है। वसिष्ठ राम संवाद में जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति के विषय में आलोचना देखी गई है। जिसमें वशिष्ठ जी कहते हैं

''नृणां ज्ञानैकनिष्ठानामात्मज्ञानविचारिणाम्।
सा जीवन्मुक्ततोदेति विदेहोन्मुक्ततेव या''॥ इति।।

लौकिक वैदिक कर्मों का त्यागपूर्वक केवल ज्ञाननिष्ठा युक्त आत्मविचारपराणपुरुष ही जीवन्मुक्थावस्था को प्राप्त करते हैं। यह जीवन्मुक्तावस्था विदेहमुक्तावस्था की हेतु है। जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति इस प्रकार से दोनों अवस्थाओं में मुक्ति की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। लेकिन जीवन्मुक्त की इन्द्रियाँ तथा लौकिक दृष्टि होती है। तत्त्वदृष्टि से उसकी इन्द्रियाँ सम्भव नहीं होती हैं। विदेहमुक्ति होने पर तो देहनाश से उससे अधिष्ठित इन्द्रियों का भी नाश हो जाता है। आचार्य वसिष्ठ ने कहा है कि जीवन्मुक्त का जो देह इन्द्रियों के द्वारा जो व्यवहार किया जाता है वह लोक में होता है वह तत्वतः नहीं होता है। यह नामरूपात्मक जगत् उसके लिए नष्ट हो जाता है। लेकिन केवल प्रारब्ध कर्मवश वह देहनाश पर्यन्त जीवन को धारण करता

ध्यान दें:

है। और उसके लिए यह नामरूपात्मक जगत् केवल चित्स्वरूप से दिखाई देता है। प्रतीयमान गिरिनदी समुद्रादि भी सभी जीवन्मुक्त के लिए मिथ्या होते हैं। क्योंकि जीवन्मुक्त पुरुष की अज्ञान वृत्तियों के अभाव से उसे बाह्य जगत् सुषुप्ति के समान प्रतीत होता है। यहाँ पर यह कहतें हैं कि सुषुप्ति में तो अज्ञानवृत्तियों का तात्कालिक अभाव होता है। लेकिन जीवन्मुक्ति की अज्ञानवृत्तियाँ तो पूर्णरूप से नष्ट हो जाती है। इसलिए सुषुप्ति से युक्त पुरुष जीवन्मुक्त नहीं कहा गया है। अत: वसिष्ठ जी ने कहा है-

''यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तं गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते''॥ इति।।

सुख दु:ख के द्वारा जिसका मन विषादपूर्ण नहीं होता है। जिसके मुख पर विषाद का चिन्ह् दिखाई नहीं देता है। यथा प्राप्त स्थिति ही जिसकी दिखाई देती है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। अत: शास्त्रों में कहा है-

''नोदेति नास्तमायाति सुखदु:खैर्मुखप्रभा।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते''॥ इति।।

शास्त्रों में कहा गया है की शुकदेव वामदेव जनक आदि महापुरुष जीवन्मुक्त थे। "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये" इस श्रुति के अनुसार आचार्य के उपदेश से अविद्या बन्धन से मुक्त होकर के तत्वदर्शी व्यक्ति जब ब्रह्मस्वरूप को जानता है।तब वह शरीर त्याग नहीं करता है। देहारम्भक प्रारब्ध के उपभोग के द्वारा ही विदेहमुक्त होती है। भले ही ब्रह्मसाक्षात्कार के द्वारा अज्ञान का नाश हो जाता है फिर भी प्रारब्ध के कार्यवश कुछ काल तक शरीर रुकता है। इसलिए वह जीवन्मुक्त कहलाता है। वैसे ही श्रुतियों में कहा है की नामुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। इसलिए भोग किए बिना कोट कल्पों में भी कर्मों का नाश नहीं होता है। यह स्मृति ही जीवन्मुक्तावस्था में प्रमाण होती है। इसलिए यदि जीवन्मुक्ति को अङ्गीकार न करें तो इस श्रुति की अनुपपत्ति हो जाएगी।

आचार्य सदान्दयोगीन्द्र ने कहा है कि ज्ञान के द्वारा पुण्यात्मा के अज्ञान का बाध होता है। लेकिन प्रारब्धकर्मवश फलभोगसमाप्ति नहीं होती है। इसलिए शरीर का धारण होता है। अत: सदानन्दयोगीन्द्र ने स्वस्वरूपभूत अखण्डब्रह्म के ज्ञान को ही अज्ञान का विनाशक कहा है। अब यह प्रश्न होता है कि किस प्रकार से स्वविरोधि अज्ञान का नाश होता है। जैसे दीपक अन्धकार का विनाशक होता है उसी प्रकार से ब्रह्मज्ञान भी अज्ञान का विनाशक होता है। अज्ञान अनादिकाल से विद्यामान होता है तो भी ब्रह्म के उदय होने से नष्ट हो जाता है। क्योकि युगयुगान्तरों से सञ्चित तथा अनादिकाल से सञ्चित अन्धकार भी जैसे दीपक के जलाने से दूर हो जाता है तथा दीपके हटाने पर फिर से अन्धकार आजाता है। उसी प्रकार से अखण्डब्रह्माकार चित्तवृत्ति में प्रतिबिम्बचिदाभास अज्ञान का विनाश करता है। सदानन्द के द्वारा अध्यारोपवाद पुरस्सर तत्वपदार्थों का शोधन करके तत्त्वमसि इस वाक्य के द्वारा अखण्डार्थ में अवबोधित अधिकारि की मैं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्यं स्वभाव परमान्द अनन्त अद्वितीय ब्रह्म हूँ इस प्रकार सी चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। और वह चित्प्रतिबिम्ब सहित होकर के प्रत्यगभिन्न अज्ञान परब्रह्म को विषयीकृत करके तद्गत अज्ञान का बाध करती है। जिससे अज्ञान का नाश होने पर अज्ञान कार्यत्व से स्वयं भी नष्ट हो जाती है। जब पट कारण युक्त तन्तु को जलाने से पट रूपी कार्य का भी नाश हो जाता है। इस प्रकार से अखण्डाकार चित्तवृत्ति ही अज्ञान का नाश करती है। अज्ञान का नाश होने पर ज्ञान स्वयं प्रकाशित हो जाता है। तब दग्ध बीज जैसे फिर अङ्कुर को जन्म देने में समर्थ नहीं होता है वैसे ही ज्ञानाग्नि के द्वारा अज्ञान के भस्म होने से फिर पुरुष बन्धनों में नहीं बन्धता है। ज्ञान अज्ञान के सभी कार्यों का नाश करता है तो भी वह प्रारब्ध का नाश नहीं कर सकता है।

यहाँ पर तीन प्रकार के कर्म को जीतना चाहिए। वो हैं - प्रारब्ध कर्म,सञ्चित कर्म तथा क्रियमाण

ध्यान दें:

कर्म। जो कर्म इस जन्म में फल देने के लिए आरम्भ होता है वह प्रारब्ध कर्म कहलाता है। जीव के प्रयाण काल में सञ्चित कर्मों फिर नूतनशरीरभोगादि के लिए उद्बुध होकर के शरीर का निर्माण करतें है। वे कर्म प्रारब्ध कर्म कहलाते है। प्रारब्ध से अतिरिक्त कर्म सञ्चित कर्म होते है। जो भविष्य काल में फल देंगे जन्मजन्मान्तरों से सञ्चित वह कर्म फल सञ्चित कर्म कहलाता है। ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म करती है। इस प्रकार से श्रुतियों में बताया गया है। तथा सभी सञ्चित एवं क्रियमाण कर्म ब्रह्मज्ञान के द्वारा नष्ट होते हैं। इस प्रकार से भी श्रुतियों मे कहा है।

लेकिन प्रारब्ध कर्म नष्ट नहीं होते है। इस जन्म में जो क्रियमाण कर्म फल प्रदान नहीं करते हैं अपितु भावी जन्म में फल प्रदान करने के लिए सञ्चित होते हैं वे कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। इसलिए प्रारब्ध कर्म का तो भोग के द्वार ही क्षय होता है। जितने समय तक प्रारब्ध कर्मों का भोग होता है उतने समय तक तो शरीर धारण आवश्यक रहता ही है।

अब प्रश्न करते हैं कि अज्ञान का मूलोच्छेद ज्ञान के द्वारा होता है अथवा नहीं। यदि ज्ञान के अज्ञान का नाश होता है तो अज्ञानकार्य प्रारब्ध का भी नाश ज्ञान के द्वारा होना चाहिए यदि ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश नहीं होता है तो ब्रह्मज्ञान की व्यर्थापत्ति हो जाएगी। यहाँ पर अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा कहा गया है कि ज्ञान अज्ञान का नाश का कारण तो है लेकिन जैसे मूलोच्छेदन के द्वारा वृक्ष का भी उच्छेद होता है उसी प्रकार से यहाँ पर अज्ञान का नाश होने पर भी उसी क्षण शरीर का नाश नहीं होता है। प्रारब्ध रूप प्रतिबन्धक का कारण सामग्री में होने पर भी कार्य उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए जब तक प्रारब्ध का भोगों का क्षय जब तक नहीं होता है तब तक शरीर रुकता है।

अब फिर प्रश्न उत्पन्न होता है की प्रारब्ध के ज्ञान विरोधी होने में क्या कारण है। सर्वकर्मनाशकत्व होने पर भी ज्ञान से प्रारब्ध का नाश क्यों नहीं होता है। तो वेदान्ताचार्यों के द्वारा कहा गया है कि दृष्टानुरोध के द्वारा ही यह स्वीकार करना चाहिए। यहाँ पर परामर्थत: जगत होता ही नहीं है। लेकिन लोक में दर्शनत्व के कारण शास्त्रों में कहा गया है और तो नैयायिक भी दर्शवश ही परमाणु को स्वीकार करतें है। इसी प्रकार से लोक में जीवन्मुक्त भी देखे जाते है। इसलिए ज्ञान के द्वारा ही प्रारब्ध का क्षय होता है। नहीं तो शरीर में विद्यमान के कभी भी विद्या का उदय नहीं हो। लेकिन शुकवामदेवादि मुक्तपुरुषत्व के द्वारा प्रसिद्ध शास्त्रों में उल्लिखित है।

अब कहते हैं कि यदि ब्रह्मविद्या मूल अविद्या की पूर्ण रूप से नष्ट कर देती है तो दाहकारण से विदुषों का देहादि में प्रतिभास होता है। तो कहते हैं की लोक में भी देखा जाता हैं कि विद्युत् जाती है तो भी कुछ क्षण तक पंखा चलता ही है। उसी प्रकार से रज्जु में सर्प बाधित होता है तो भयकम्पनादि उसी क्षण नहीं जाते है। उसी समय निवृत्त होने पर भी चक्र की भ्रम क्रिया निवृत्त नहीं होती है। उसी प्रकार से प्रकृति में भी जीवन्मुक्त दशा में अज्ञान नष्ट होता है तो अज्ञान के संस्कार नष्ट नहीं होते है। यह अविद्या का संस्कार ही जीव की परममुक्ति में बाधक होता है।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. कर्म कितने प्रकार के होते हैं?
2. क्रियमाण कर्म कौन से होते हैं?
3. सञ्चित कर्म किसे कहते हैं?
4. प्रारब्ध किसे कहते हैं?

ध्यान दें:

5. ज्ञान के साथ किस कर्म का विरोध नहीं होता है?
6. प्रारब्ध कर्मों का क्षय किस प्रकार से होता है?
7. क्रियमाण कर्म का क्षय किस प्रकार से होता है?
8. सत्ता कितने प्रकार की होती है।
9. जगत की पारमार्थिक सत्ता होती है अथवा नहीं?
10. जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति में क्या हेतु है?

26.4) जीवन्मुक्त का आचरण

जीवन्मुक्त का स्वरूप कहकर के अब उसके आचरण के विषय में कहा जा रहा है। जिस प्रकार से जादुगर अपने जादु को जानता हुआ उसको सत्य को रूप में ग्रहण नहीं करता है।उसी प्रकार से जीवन्मुक्त जगत् प्रपञ्च को मिथ्या मानकर के उसको सत्य के रूप में नहीं देखता है। इसलिए ही जीवन्मुक्त फिर मांसशोणित आदि को पारमार्थिक रूप से ग्रहण नहीं करता है। और जीवन्मुक्त के भूख शोक मोह आदि ये धर्म तत्वत: नहीं होते हैं। भले ही लोक व्यवहार से लोग देखते हैं की जीवन्मुक्त पुरुष भी अज्ञानबद्ध पुरुषों के जैसे ही व्यवहार करते हैं फिर भी जादुगर के जादु के समान मिथ्या ही होता है। उसी प्रकार से श्रुतियों में उसे चक्षु युक्त होते हुए भी अचक्षुयुक्त तथा कर्ण युक्त होते हुए भी अकर्ण युक्त कहा है। और उपदेश साहस्री ग्रन्थ में भी कहा हैं कि

''सुषुप्तवत् जाग्रति यो न पश्यति पश्यन्नपि चाद्वयत्त्वत:।
कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च य: स आत्मविन्नान्यो इतीह निश्चय:''॥ इति।

जो पुरुष जाग्रत काल में भी सुषुप्त की तरह ही देखता है। लेकिन जीवन मुक्त अद्वैत का निश्चय हो जाता है। इसलिए भले ही वह द्वैत को देखता है फिर भी अद्वैत के द्वारा द्वैत के बाधवश वहां द्वैत को तत्वत: नहीं देखता है। अपरदृष्टि के द्वारा भलेही वह कार्य करता हुआ है लेकिन जीवन्मुक्त निष्क्रिय ही रहता है। इस प्रकार से यह सुनिश्चित होता है कि जीवन्मुक्त ही आत्मवान होता है न की अन्य।

जीवन्मुक्त की जैसे संसारदशा में अनुष्ठीयमान पूर्वाहारविहारादि जैसे अनुवृत्ति होती है। वैसे ही ब्रह्मज्ञान से पूर्व विद्यामान शुभवासनाओं की भी अनुवृत्ति होती है। तथा शुभ तथा अशुभ की प्राप्त में औदासीन्य होता है। भलेही जीवन्मुक्त पुरुष साधारण जन के समान आचरण करता है फिर भी उसमें अभिमान कहीं भी नहीं होता है। इसलिए तत्वज्ञान के बाद प्रपञ्च वस्तुओं के ऊपर उसका औदासीन्य होता है। दर्पण मे जैसे मुख प्रतिबिम्ब के मानापमानों के द्वारा कोई परिवर्तन नहीं होता है, उसी प्रकार से जीवन्मुक्त को भी जगत् के मिथ्यात्व के ज्ञान से हर्षविषादादि नहीं होते है। क्योंकि जीवन्मुक्त को हमेशा यह बोध होता है की प्रतीयमान जगत तो मिथ्या रूप से प्रातिभासिक है। न केवल जगत अपितु शास्त्र भी उसको मिथ्या रूप में ही दिखाई देते हैं। जिस प्रकार से दीपक मार्ग के अन्धकार का नाश करके पथिक को घर तक ले जाता है उसके बाद में उसका कार्य पूर्ण हो जाता है उसी प्रकार से शास्त्र अज्ञानी को मार्ग दिखाकर के आत्मज्ञान की और ले जाते हैं। उसके बाद में शास्त्र का उपादेय नष्ट हो जाता है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है की स्वप्न में भी लोग प्रातिभासिक वस्तु को देखते हैं। इसलिए स्वप्नस्थ जीवन तथा मुक्ति में क्या भेद होता है। यहाँ पर यह समाधान है की स्वप्न में स्वप्नस्थ ज्ञान नहीं होता है। वह प्रातिभासिक वस्तु ही होती है। लेकिन जीवन्मुक्त तो यह जानता है की इस जगत में विद्यमान वस्तु प्रातिभासिक मिथ्यारूप में ही होती है।

ध्यान दें:

जीवन्मुक्त यदि प्रपञ्च को मिथ्यावत् जानता है तो जीवन्मुक्त की पापपुण्य में भी मिथ्यादृष्टि होनी चाहिए फिर तो जीवन्मुक्त में स्वच्छाचार प्रसङ्ग दोष भी आता है। जीवनमुक्त यदि स्वेच्छाचारी हो जाए तो साधारण मानवों से उसका कोई भेद ही नहीं हो। फिर जीवन्मुक्त लोकयात्र उच्छेदकरत्व अर्थात् कुमार्गी हो जाएगा। अब उत्तर देते हुए आचार्य सदानन्दयोगीन्द्र ने जीवन्मुक्ति के वर्णन के समय में यह कहा है की जीवन्मुक्त की शुभ वासनाओं की भी अनुवृत्ति होती है। लौकिक दृष्टि से तो यथेच्छाचरित्व जीवन्मुक्त हो सकता है। लेकिन वास्तविक दृष्टि से जीवन्मुक्त स्वयं का भोजन औरों को देता है। योग प्रभाव से आर्त को आरोग्य भी देता है। जीवन्मुक्त लोक संग्रह के लिए मुक्ति के बाद भी कर्म करता है इस प्रकार से गीता में कहा है। जीवन्मुक्त ज्ञान प्राप्त करके स्वेच्छाचारी नहीं होता है क्योंकि उसकी अशुभादि वासनाएँ तो साधनकाल में ही लुप्त हो जाती है। इसलिए शुभवासनाओं की ही अनुवृत्ति होती है। इसलिए ही वेदान्तगुरु सुरेश्वराचार्य नें कहा हैं कि-

''बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेच्छाचरणं यदि।
शूनां तत्त्वदृशां चौव को भेदोऽशुचिभक्षणे''॥ इति।।

आचार्य नें कहा है कि जो मुमुक्षु अद्वैतत्व का साक्षात्कार करके यदि वह यथेच्छाचारी होता है तो उसका साधारण व्यक्ति से क्या भेद होगा। यदि दोनों की कुभोजन में ही मति हो जाए तो तत्वदृष्टि से उनमें क्या भेद होगा।

आचार्य विद्यारण्य स्वामी ने तत्वदर्शियों को किस प्रकार से आचरण करना चाहिए उसका उपदेश दिया है। वह इस प्रकार से है

''विड्वराहादितुल्यत्वं मा काङ्क्षीस्ततत्त्वविद्भवान्।
सर्वधीदोषसंत्यागाल्लोकेः पूज्यस्व देववत्''॥ इति।।

इसका अर्थ यह हैं कि सभी प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त तुम कामादि त्याग अशक्त्व के द्वारा सभी अधर्म अनुचित वस्तुओं की आकांक्षा मत करो। अपितु कामादिलक्षण और सम्पूर्णदोष के नाश के द्वार सभी लोगों के द्वारा देवता समान पूजित हो।

26.5) विदेहमुक्ति

जीवनमुक्ति के अनन्तर विदेह मुक्त का स्वरूप बताया जा रहा है। जीवन्मुक्त की ही विदेह मुक्ति होती है। जीवन्मुक्त के प्रारब्धकर्मों के उपभोग के द्वारा क्षय होने से देहनाश होने पर उसकी विदेहमुक्ति होती। सञ्चितादि कर्मों का तो पहले ही नाश हो जाता है। इसलिए जीवन्मुक्त के और भी कर्म फलों को भोगने के लिए अवशिष्ट नहीं होते है। इसलिए देहनाश से विदेहमुक्ति होती है। यह ही मुक्ति परममुक्ति कही जाती है। स्वस्वरूप का ब्रह्म के साथ एकीभाव हो जाता है। इस प्रकार से शास्त्रों में भी कहा है-

''जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते।
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव''॥ इति।।

जैसे वायु कभी चलने को त्यागकर के निश्चलरूप से अवितिष्ठित होती है। वैसे ही मुक्त आत्मा उपाधिकृत संसार का त्याग करके अपने स्वरूप में अवतिष्ठित होता है। तब आत्मा की कहीं भी गति नहीं होती है। इसलिए श्रुतियों में कहा है

''इहैव प्रविलीयन्ते कामाः'' इति "अत्र ब्रह्म समश्नुते'' इति च।

विदेहमुक्ति की और भी स्थिति शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित की गई है

''विदेहमुक्तो नोदेति नास्तमेति न शाम्यति।

ध्यान दें:

न सन्नासन्न दूरस्थो न चाहं न च नेतरः''॥ इति।।

विदेहमुक्त का फिर आविर्भाव नहीं होता है। और विदेहमुक्त का अस्त भी नहीं होता है। विदेह मुक्त न तो सत्स्वरूप में विशिष्ट होता है और नहीं असत्स्वरूप में विशिष्ट होता है। और तो उसका कोई भी व्यवहार भी नहीं होता है। यह न तो समष्टिरूप होता है और न ही व्यष्टिरूप होता है।

जीवन्मुक्त का आत्मसाक्षात्कार भले ही हो जाता है। फिर उसको प्रबल प्रारब्ध वश उसकी अन्तिम मुक्ति नहीं होती है। इसलिए उसे विदेहमुक्ति की आवश्यकता होती है।

कर्म ही जीव के लोकान्तरगमन का कारण होता है। इसलिए कर्म के नाश से विदेहमुक्त का कहीं भी गमन नहीं होता है। वह यहाँ पर ही लीनता को प्राप्त कर लेता है। और सभी कर्मों के नाश के कारण उसका फिर दूसरा जन्म भी नहीं होता है। इस प्रकार से श्रुतियों में कहा है

''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते''॥ इति।।

यहाँ पर ब्रह्मज्ञ की जो विदेह मुक्ति वर्णित है वह मुक्ति तो औपचारिक होती है। जैसे सांख्य में कहते हैं की पुरुष का बन्ध भी नहीं होता है तथा मुक्ति भी नहीं होती है। वस्तुतः यदि बन्ध होता तो कभी मुक्ति ही नहीं होती। उसी प्रकार से अद्वैतवादी भी बन्ध की सत्यता को स्वीकार नहीं करते हैं। इसलिए परमार्थभूत मुक्ति भी नहीं होती है। अतः मुक्ति तो औपचारिकी ही होती है। यदि मोक्ष उत्पन्न होता तो मोक्ष का भी नाश होना चाहिए कारण यह है कि जगत में जो वस्तु उत्पन्न होती हैं वह नष्ट भी होती है। इसलिए इससे तो मोक्ष में भी अनित्यता आ जाती है। इसलिए मोक्ष नहीं होता है। तथा बन्ध का करण भी नहीं है। अतः मोक्ष तथा बन्ध तो सापेक्ष होते है। गौडपादाचार्य ने माण्डूक्यकारिका में कहा है कि-

''न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता''॥ इति।।

अतः इसका निरोध भी नहीं है तथा जीव की उत्पत्ति भी नहीं है। जीव बद्ध होता है। अतः बन्ध का कारण भी नहीं है। और मुमुक्षु भी नहीं है। मोक्ष भी नहीं है। यह ही वास्तविक परमार्थता है। इसलिए परमार्थता अखण्डसच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत्य है अन्य सब मिथ्या है।

अब फिर प्रश्न होता है कि यदि जीव चिरमुक्त होता है तो उस जीव का मोक्ष क्रियासाध्य नहीं होता है। इसलिए फिर मोक्ष में पुरुषार्थता की आवश्यकता क्या है। लोक में पुरुषों के द्वारा जिसे चाहा गया है वह पुरुषार्थ होता है। और अप्राप्त की प्राप्ति ही पुरुषार्थ होती है। वहाँ से ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है। इसलिए पुरुष की प्रवृत्ति के अभाव से मोक्ष की पुरुषार्थता अङ्गीकार नहीं होना चाहिए। यहाँ पर यह समाधान बताया जाता है की न केवल अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति ही पुरुषार्थ होता है, अपितु प्राप्त की भी प्राप्ति पुरुषार्थ रूप में स्वीकार की जाती है। जैसे यह मेरा उपनेत्र है मेरे द्वारा भूल वश इसे कहीं पर रखकर यदि भुला दिया जाता है, और कोई मेरे से यह कहता है की तेरा उपनेत्र यहाँ पर है। उसके द्वारा मुझे उपनेत्र प्राप्त होता है। यहाँ पर मेरा उपनेत्र पहले से ही था। लेकिन मेरे द्वारा अज्ञानवश उसे भुला दिया गया। अज्ञान के नाश होने पर वह मुझे फिर से प्राप्त हो गया। यही प्राप्त की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से जीव मुक्त ही होता है। लेकिन वह अज्ञान वश अपने स्वरूप को नहीं जानता है। जब उसे आत्मज्ञान हुआ तब ही उसके अज्ञान का नाश हुआ इस प्रकार से जीव ने अपना स्वरूप ही जाना।

और भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में यह कहा है

''प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

ध्यान दें:

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते''॥ इति।।

काम तीन प्रकार के होते है। बाह्य आन्तरिक तथा वासना मात्र रूप। उपार्जित मोदकादि बाह्य काम होते हैं। आशारूपी मोदकादि आन्तरिक तथा मार्ग में आये हुए तिनकों के समान अचानक आने वाले वासनारूप काम होते हैं। इन तीन प्रकार के कामों का नाश होने पर ही बुद्धि समाहित होती है। तब ही सभी काम परित्यक्त होते हैं। उसके द्वारा ही जीवन्मुक्ति होती है। तथा उससे प्रारब्ध के क्षय होने पर विदेहमुक्ति भी होती है।

कुछ दु:खों से रागादिनिमित्तजन्य रजोगुणरूप सन्तापात्मिका प्रतिकूलचित्तवृत्ति भी होती है उस प्रकार के दु:ख होने पर मैं पापी हूँ मैं दुरात्मा हूँ, इस प्रकार से अनुतापात्मिका तमोगुणविकारत्व के द्वारा भ्रान्तिरूप चित्वृत्ति का उद्वेग होता है। सुख में राजत्व तथा पुत्रालाभादिजन्य सात्त्विकी प्रीतिरूप अनुकूल चित्तवृत्ति होती है। उसमें सुख होने पर आगामी उस प्रकार के सुख के कारण पुण्य के अनुष्ठान के लिए उसप्रकार की सुखापेक्षारूपी तामसी वृत्ति इच्छा होती है। यहाँ पर सुख तथा दु:ख में पूर्वकर्म प्राप्तित्व से व्युत्थित चित्त के वृत्तिसम्भव से दोनों मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए उद्वेग तथा स्पृहा विवेकियों में सम्भव नहीं होती है। वैसे ही रागभय क्रोधादि भी विविकियों में नहीं होते हैं। इस प्रकार से लक्षणलक्षित स्थित मति युक्त व्यक्ति के ही प्रारब्ध के नाश होने पर विदेहमुक्त होती है। इस प्रकार से भगवान श्री कृष्ण ने कहा है-

''दु:खेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते''॥ इति।।

जीवन्मुक्त जब उसके सभी अङ्गों के विषयों की आत्मा में प्रतिष्ठा कर लेता है तब ही जीवन्मुक्त की प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। जैस कूर्म स्वयं ही अपने अङ्गों को अपनी देह में ग्रहण कर लेता है। उसी प्रकार से स्थित प्रज्ञ भी उसकी इन्द्रियों को वश में करता है। समाधि से उठे हुए पुरुष को उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में होकर के रोकती है। क्योंकि समाधि में अज्ञानवृत्तियों का नाश हो जाता है। इसलिए भले ही इन्द्रियाँ लौकिक दृष्टि से कार्य करती है फिर भी वे तत्वत: कार्य नहीं करती हैं। इसलिए गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-

''यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता''॥ इति।।

और भी जब इन्द्रियों के द्वारा विषय से रागमोहादि वासानाओं का नाश हो जाता है। तब ही पुरुष मुक्त होता है। वह समाधि के अभ्यास बल से ही सम्भव होता है। समाधि के द्वारा चित्त की प्रसन्नता उत्पन्न होती है। उस प्रकार के समाहित चित्त जीवन्मुक्त के काल में प्रारब्ध के क्षय से विदेह मुक्ति होती है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि मृत्यु के बाद भी इन्द्रियाँ कार्य नहीं करती है। तथा मृत्तक का लौकिक व्यवहार भी नहीं देखा जाता है। इसलिए मृत्यु तथा विदेहमुक्ति में क्या भिन्नता है।

यहाँ पर यह समझाना चाहिए की मृत्यु में इन्द्रियाँ सूक्ष्मशरीर के द्वारा नूतन शरीर में जाती हैं। तथा मरणशील के अज्ञान का नाश नहीं होता है। इस अज्ञान के कारण ही वह जीव फिर से शरीर धारण करता है। और उसका फिर से जन्ममरणादि होता है। इसलिए अज्ञानजन्य जो कार्य होते हैं। वे विदेहमुक्त सम्भव नहीं होते हैं।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 26.3

1. विदेहमुक्ति के क्या लक्षण होते हैं?
2. विदेह मुक्ति किसकी होती है?
3. मृत्यु तथा विदेहमुक्ति में क्या भिन्नता है?
4. सभी की विदेह मुक्ति होती हैं अथवा नहीं?
5. विदेह मुक्ति के बाद जन्म होता है अथवा नहीं।
6. विदेहमुक्ति के बाद प्रारब्ध कर्मों का क्या होता है?
7. जीवन्मुक्त का यदि अज्ञान नहीं रुकता है तो विदेमुक्त का क्या नष्ट होता है।
8. क्या चार्वाक विदेह मुक्ति को स्वीकार करते हैं?
9. विदेहमुक्त का क्या प्रमाण है?
10. विदेहमुक्त के पुण्यफल होतें हैं अथवा नहीं।

पाठ सार

वेदान्त में कहे गये साधनचतुष्टय सम्पन्न मुमुक्षु प्रमाता पुरुष जीवन्मुक्ति की अवस्था में जाता है। जीवित रहते हुए पुरुष के कर्तृत्व भोक्तृत्व तथा सुखदु:खादि लक्षण जो चित्त के धर्म होते हैं वह क्लेश रूपत्व से बन्ध होता है। उसका निवारण जीवन मुक्ति होती है। जीवित रहते हुए ही जो मुक्त है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। वेदान्तसार के प्रकरण ग्रन्थ में जीवनमुक्त का लक्षण विस्तार से बताया गया है। "यदा सर्वे प्रमुच्यते सचक्षु: अचक्षुरिव सकर्म अकर्म इव" इत्यादि श्रुतिवाक्य जीवन्मुक्त पुरुष के स्वरूप को प्रस्तुत करते है। 'सुषुप्तवज्जाग्रति यो नपश्यति ' इत्यादि श्रुतिवाक्यों के द्वारा जीवन्मुक्त का स्वभाव कहा गया है। जीवन्मुक्त पुरुष ही प्रारब्ध के नाश के बाद विदेह मुक्ति को प्राप्त करता है। प्रारब्धकर्मो के क्षय होने पर जीवन्मुक्त पुरुष के कोई भी कर्म फल भोगने के लिए नहीं रुकते है। उसके बाद उसकी विदेह मुक्ति हो जाती है। यह ही मुक्ति परममुक्ति होती है। विदेहमुक्ति होने पर जीव ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। इस विदेह मुक्ति की स्थिति शास्त्रों के द्वारा इस प्रकार से प्रतिपादित की गई है।

विदेहमुक्तो नोदेति नास्तमेति न शाम्यति।
न सन्नासन्न दूरस्थो न चाहं न च नेतर:।। इति।।

आपने क्या सीखा

- जीवन मुक्ति के स्वरूप
- विदेह मुक्ति के स्वरूप
- जीवन मुक्ति की आवश्यकता या अनावश्यकता के प्रसंग को जाना
- जीवन मुक्ति में साधन लोक व्यवहार
- जीवन मुक्ति से अज्ञान नाश

- विदेहमुक्ति की स्थिति, विदेहमुक्ति में प्रमाण तथा आवश्यकता को जाना

पाठान्त प्रश्न

1. जीवन्मुक्त के लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
2. विदेहमुक्त के लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
3. जीवन्मुक्त के आचरण के विषय में लिखिए।
4. जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति में क्या भेद होता है।
5. तीन प्रकार के कर्मों का विवरण लिखिए।
6. जीवन्मुक्ति का क्या प्रयोजन है आलोचित कीजिए।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 26.1

1. अखिलबन्धरहित आत्म ही जीवन्मुक्त के नाम से कही जाती है।
2. अद्वैतवेदान्त में मुक्ति दो प्रकार की होती है। जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति।
3. जीवन्मुक्ति सभी सम्प्रदायों के द्वारा अङ्गीकार नहीं की गई है
4. रामकृष्णादि पुरुष भी जीवन्मुक्त ही थे, और शास्त्र प्रमाण भी है।
5. वेदान्तसार के लेखक सादनन्दयोगीन्द्र है।
6. धी पद के द्वारा यहाँ पर बुद्धि का ग्रहण होता है।
7. वेदान्तसार में कहा गया है कि जीवन्मुक्त स्वस्वरूपाखण्डब्रह्मज्ञान के द्वारा तथा उस अज्ञान के बाध के द्वारा स्वस्वरूपाखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार करके अज्ञान तथा उसके कार्य सञ्चित कर्म संशय विपर्ययादि का भी बाध करके अखिल बन्ध रहित होकर के ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है।
8. जीवन्मुक्त का फिर संसार बन्ध नहीं होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 26.2

1. कर्म तीन प्रकार के होते है। सञ्चित प्रारब्ध तथा क्रियमाण।
2. इस में किए जाने वाले कर्म ही क्रियमाण कर्म पद के वाच्य है।
3. फलदान के लिए अनुन्मुख जो कर्म अनादिकाल से अर्जित तथा सञ्चित होकर के रुकते है व सञ्चित कर्म कहलाते है।
4. सञ्चितकर्मे में से कोई एक कर्म शरीर का निर्माण करवाता है वह शरीर आरम्भक कर्म ही फिर प्रारब्ध कर्म कहलाता है।
5. ज्ञान के साथ प्रारब्ध कर्म का विरोध नहीं है।
6. शरीर के समाप्त होने पर

ध्यान दें:

7. भाग के उपरांत
8. सत्ता तीन प्रकार की होती है। व्यवहारिक, प्रातिभासिक तथा पारमार्थिक।
9. जगत की पारमार्थिक सत्ता नहीं होती है।
10. जीवन्मुक्ति ही विदेहमुक्ति का हेतु है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 26.3

1. प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने पर जीवन्मुक्त पुरुष के कोई भी कर्म नहीं रुकते है। उसके बाद उसकी विदेह मुक्ति हो जाती है।
2. जीवन्मुक्त ही विदेहमुक्त होता है। इसलिए विदेहमुक्ति का कारण जीवन्मुक्ति यह भी कह सकते है।
3. मृत्यु सत्य होने पर इन्द्रियाँ सूक्ष्म शरीर के साथ नये देह में चली जाती है। लेकिन मरणशील के अज्ञान का नाश नहीं होता है। इसलिए अज्ञान के कारण से वह फिर नया शरीर धारण करता है। लेकिन जीवन्मुक्ति के बाद जिसकी विदेहमुक्ति होती है उसका फिर जन्ममरणादि कार्य नहीं होते है। क्योंकि विदेहमुक्त का अज्ञान के अशेष से विनाश हो जाता है।
4. सभी की विदेह मुक्ति नहीं होती है। जिसका अशेषता से अज्ञान का नाश होता है। उसकी ही विदेहमुक्त होती है।
5. विदेह मुक्ति के बाद में फिर जन्म नहीं होता है।
6. हाँ प्रारब्धकर्म का नाश होने पर विदेहमुक्ति होती है। क्योंकि प्रारब्ध के उपभोग के द्वार उनका क्षय होने लगता है।
7. भले ही जीवन्मुक्त अज्ञान नहीं रुकता है फिर भी उसका प्रारब्ध कर्म तो होता ही है जब प्रारब्ध कर्म का नाश होता है तब विदेहमुक्ति होती है।
8. हाँ चार्वाक विदेहमुक्ति को स्वीकार करते हैं। लेकिन उनकी विदेह मुक्ति में केवल शरीर का ही नाश होता है।
9. विदेहमुक्ति के प्रमाण को यदा संरहते चायं कूर्मोऽङ्गानीव इत्यादि स्मृतियों के द्वारा समझा जाता है।
10. विदेहमुक्त का अशेषत: अज्ञान के नाश होने से उसके पुण्य भी नहीं रुकते हैं।